शिष्य दयानन्द जी ने गुरू-आज्ञा को शिरोधार्य किया तथा अपने पास के ग्रन्थों को यमुना में बहा दिया और अपने गुरूजी को यह आश्वासन भी दिया कि भोजनादि की समुचित व्यवस्था भी वह स्वयं कर लेंगे। इस प्रकार भावी भारत-भाग्य विधाता दयानन्द जी को आर्ष-ग्रन्थों की शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति प्राप्त हो गई। आरम्भ में तो दुर्गाप्रसाद खत्री जी ने महर्षि जी के लिए भुने हुए चनों की व्यवस्था कर दी मगर बाद में गुजराती औदीच्य ब्राह्मण जोशी बाबा अमरलाल जी ने दयानन्द जी के भोजन तथा पुस्तकों आदि की व्यवस्था कर दी। छत्ता बाजार के खेतामल नन्नुमल सर्राफ जी ने तेल के लिए चार आने मासिक तथा हरदेव पत्थरवाले जी ने दूध के लिए प्रतिमास दो रूपए देने नियत कर दिए। महर्षि दयानन्द जी का अध्ययन आरम्भ हुआ तो प्रज्ञा-शक्ति इतनी तेज थी कि एक-दो बार सुनकर ही पाठ सदा के लिए स्मरण हो जाता था। उनकी गुरू-भक्ति भी अद्‌भुत थी। वे दण्डी जी के ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने तथा सांयकालीन स्नान के लिए और पीने के लिए सर्दी, गर्मी व बरसात में स्वयं यमुना से अपने कन्धों पर बीसियों जल के घड़े भरकर लाते थे। अध्ययन काल में कुछ अवसर भी आए कि उन्हे नाहक ही अपने गुरूजी की नाराजगी का शिकार होना पड़ा मगर दयानन्द जी ने उसे भी अपने लिए आर्शीवाद ही माना। यूँ तो महर्षि दयानन्द जी ने अपने गुरू दण्डी स्वामी जी से वहु-विद्याएं अर्जित की होगी मगर उनके गुरूजी ने जो मुख्य बात उनके मस्तिष्क में स्थापित की वह थी आर्ष और ग्रन्थों में भेद करना। दण्डी स्वामी विरजानन्द जी के पारखी प्रज्ञा-चछुओं ने भली प्रकार से यह सुनिश्चित कर लिया था कि दयानन्द ही उनके कार्य का आगे बढ़ाने वाला उनका उत्तराधिकारी है इसलिए उस पर उन्होंने अपना सारा ज्ञान उण्डेल